भूमिका

'वेद' का अर्थ 'बोध' या 'ज्ञान' है। विद्वानों ने संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् इन चारों के संयोग को समग्र वेद कहा है। उपनिषद् को वेद का शीर्ष भाग कहा गया है, वेदान्त कहा गया है; क्योंकि यह वेदों का अन्तिम (सर्वश्रेष्ठ) भाग है। भारतीय दर्शन जगत में प्रसिद्ध 'प्रस्थान त्रयी' के उपनिषद् आदिम ग्रन्थ हैं तथा अन्य दोनों गीता और ब्रह्मसूत्र के उपजीव्य (आश्रयीभूत)। इसे आध्यात्मिक मानससरोवर कहा जा सकता है, जिससे त्रिविःश्रुत ज्ञान की सरिताएँ इस पुण्य भूमि में मानव मात्र के अभ्युदय (भौतिक उन्नति) एवं निःश्रेयस (आध्यात्मिक कल्याण) के लिए प्रवहमान हैं।

'उपनिषद्' का भाव इसमें 'उप' और 'नि' उपसर्ग हैं। 'सद्' धातु 'गति' के अर्थ में प्रयुक्त होती है। 'गति' शब्द का उपयोग ज्ञान, गमन और प्राप्ति इन तीन संदर्भों में होता है। यहाँ प्राप्ति अर्थ अधिक उपयुक्त है। **''उप सामीप्येन, नि नितरां, प्राप्नुवन्ति परं ब्रह्म यया विद्यया सा उपनिषद्।''** अर्थात् जिस विद्या के द्वारा परब्रह्म का सामीप्य एवं तादात्म्य प्राप्त किया जाता है, वह 'उपनिषद्' है।

दूसरे शब्दों में 'उप', 'नि' इन दो उपसर्गों के साथ 'सद्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय के प्रयोग से 'उपनिषद्' शब्द बना है। 'सद्' धातु के तीन अर्थ मान्य हैं (१) विशरण (विनाश) (२) गति (ज्ञान और प्राप्ति) (३) अवसादन (शिथिल करना), इस आधार पर 'उपनिषद्' का अर्थ हुआ **''जो पाप ताप का नाश करे, सच्चा ज्ञान प्रदान करे, आत्मा की प्राप्ति कराये और अज्ञान अविद्या को शिथिल करे, वह उपनिषद् है।''**

अष्टाध्यायी (१.४.७९) में **जीविकोपनिषदावौपम्ये** सूत्रानुसार उपनिषद् शब्द परोक्ष या रहस्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में गुप्त काल के गुप्त प्रयोगों की चर्चा में औपनिषद प्रयोग शब्द व्यवहृत हुआ है। इससे यह प्रकट होता है कि उपनिषद् का तात्पर्य रहस्य भी है।

अमरकोष (३.९९) में भी आता है **''धर्मे रहस्युपनिषत् स्यात्''** अर्थात् उपनिषद् शब्द गूढ़ धर्म एवं रहस्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस आधार पर उपनिषद् को परोक्ष या रहस्यमय ज्ञान के स्रोत भी कह सकते हैं।

विद्वानों ने 'उपनिषद्' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार भी मानी है उप (सामीप्य अथवा व्यवधान रहित), नि (विशिष्ट या सम्पूर्ण), सद् (ज्ञान या बोध) अर्थात् 'सामीप्य द्वारा प्राप्त विशिष्ट बोध अथवा व्यवधान रहित सम्पूर्ण ज्ञान।' उपनिषदों में जिस ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है, उसे निश्चित रूप से उक्त विशेषणों से युक्त कहा जा सकता है।

एक मत यह भी है **'उपनिषद्यते प्राप्यते ब्रह्मात्मभावोऽनया इति उपनिषद्।'** जिससे ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सके, वह उपनिषद् है। तात्पर्य यह है कि उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान का ही प्रधानता से विवेचन हुआ है, जिससे उपनिषदों को अध्यात्म विद्या भी कहा जाता है। ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान, तत्त्वज्ञान और ब्रह्मविद्या ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने उपनिषदों की महत्ता मुक्त कंठ से स्वीकार की है।

उपनिषदों की महत्ता

स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक प्रवचन में कहा था -''मैं उपनिषदों को पढ़ता हूँ, तो मेरे आँसू बहने लगते हैं। यह कितना महान् ज्ञान है ? हमारे लिए यह आवश्यक है कि उपनिषदों में सन्निहित तेजस्विता को अपने जीवन में विशेष रूप से धारण करें। हमें शक्ति चाहिए। शक्ति के बिना काम न चलेगा। यह शक्ति कहाँ से प्राप्त हो ? उपनिषदें ही शक्ति की खानें हैं, उनमें ऐसी शक्ति भरी पड़ी है, जो सम्पूर्ण विश्व को बल, शौर्य एवं नवजीवन प्रदान कर सकें। उपनिषदें किसी भी देश, जाति, मत, सम्प्रदाय का भेद किये बिना हर दीन, दुर्बल, दुःखी और दलित प्राणी को पुकार-पुकार कर कहती हैं- उठो, अपने पैरों खड़े हो जाओ और बन्धनों को काट डालो। शारीरिक स्वाधीनता, मानसिक स्वाधीनता, आध्यात्मिक स्वाधीनता, यही उपनिषदों का मूल मन्त्र है।''

स्वामी विवेकानन्द जी ने उपनिषद् ज्ञान की आवश्यकता को न केवल ब्रह्म प्राप्ति के लिए ही, अपितु दैनिक जीवन के लिए भी उपयोगी बतलाया है। उनका कथन है कि उपनिषदें वह शक्ति प्रदान करती हैं, जिसके द्वारा मनुष्य जीवन संग्राम का धैर्य तथा साहस से मुकाबला करता है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र चाहे वह आध्यात्मिक हो या भौतिक दोनों में उपनिषदें अत्यन्त आवश्यक हैं।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ जी ने कहा है- 'चक्षु सम्पन्न व्यक्ति देखेंगे कि भारत का ब्रह्मज्ञान समस्त पृथिवी का धर्म बनने लगा है। प्रातः कालीन सूर्य की अरुणिम किरणों से पूर्व-दिशा आलोकित होने लगी है, परन्तु जब वह सूर्य मध्याह्न गगन में प्रकाशित होगा, तब उस समय उसकी दीप्ति से समग्र भूमण्डल दीप्तिमय हो उठेगा।'

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन का कथन है- 'उपनिषदों को जो भी मूल संस्कृत में पढ़ता है, वह मानव-आत्मा और परम सत्य के गुह्य और पवित्र सम्बन्धों को उजागर करने वाले उनके बहुत से उद्गारों के उत्कर्ष काव्य और प्रबल सम्मोहन से मुग्ध हो जाता है और उसमें बहने लगता है'।

अपनी 'उपनिषद् एक अध्ययन' पुस्तक की प्रस्तावना में सन्त विनोबा ने लिखा है- ''उपनिषदों की महिमा अनेकों ने गायी है। कवि ने कहा है कि 'हिमालय जैसा पर्वत नहीं और उपनिषदों जैसी कोई पुस्तक नहीं।' परन्तु मेरी दृष्टि में उपनिषद् पुस्तक है ही नहीं, वह तो एक दर्शन है। उस दर्शन को यद्यपि शब्दों में अंकित करने का प्रयत्न किया गया है, फिर भी शब्दों के कदम लड़खड़ा गये हैं; सिर्फ निष्ठा के चिह्न उभरे हैं। उस निष्ठा को शब्दों की सहायता से हृदय में भरकर शब्दों को दूर हटाकर अनुभव किया जाए, तभी उपनिषदों का बोध हो सकता है। मेरे जीवन में गीता ने माँ का स्थान लिया है। वह स्थान तो उसी का है; लेकिन मैं जानता हूँ कि उपनिषद् मेरी माँ की माँ है। उसी श्रद्धा से मेरा उपनिषदों का मनन, निदिध्यासन पिछले बत्तीस वर्षों से चल रहा है।''

इन मन्त्रों में प्रयुक्त हुए कठिन शब्दों को देखकर ऐसा लगता है कि यह ज्ञान केवल एकान्त सेवी सन्त-महात्माओं के लिए ही व्यवहार में आने योग्य है। साधारण स्थिति के गृहस्थ अपनी विषम परिस्थितियों के कारण इसे जीवन में उतार न सकेंगे, पर वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। जितना यह ज्ञान कठिन है, उतना ही सरल भी है। जिस प्रकार पानी में तैरना कठिन दिखाई पड़ता है, उसमें दुर्घटना की आशंका भी प्रतीत होती है; किन्तु जब सच्ची लगन होती है और प्रयत्न पूर्वक अभ्यास किया जाता है, तो वह कठिन कार्य सरल बन जाता है। इसी प्रकार उपनिषदों में जिस ब्रह्मविद्या का उल्लेख हुआ है वह भी सरल है, कठिन तो वह उन्हें ही दीखती है

जो उससे दूर रहते हैं, दूर से देखते हैं। भीतर प्रवेश करने का साहस करने पर वह सरल ही है। जितनी सरल है, उतनी ही कल्याणकारक भी है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय के शब्दों में – 'भारतीय तत्त्वज्ञान तथा धर्म-सिद्धान्तों के मूल स्रोत होने का गौरव इन्हीं उपनिषदों को प्राप्त है। उपनिषद् वस्तुतः वह आध्यात्मिक मानसरोवर है, जिससे ज्ञान की भिन्न-भिन्न सरितायें निकलकर इस पुण्य भूमि में मानव मात्र के ऐहिक कल्याण तथा आमुष्मिक मंगल के लिए प्रवाहित होती हैं। वैदिक धर्म की मूल-तत्त्व-प्रतिपादिका प्रस्थानत्रयी में मुख्य उपनिषद् ही हैं। अन्य प्रस्थान-गीता तथा ब्रह्मसूत्र- उसी के ऊपर आश्रित हैं।' भारतवर्ष में उदय होने वाले समस्त दर्शनों का – सांख्य तथा वेदान्त आदि का ही यह मूल ग्रन्थ नहीं है, अपितु जैन तथा बौद्ध दर्शनों के भी मौलिक तथ्यों की आधारशिला यही है। उपनिषद् का इसीलिए भारतीय संस्कृति से अविच्छेद्य सम्बन्ध है। इनके अध्ययन से इस संस्कृति के आध्यात्मिक रूप का सच्चा परिचय हमें उपलब्ध होता है। इसीलिए जब से किसी विदेशी विद्वान् को इसके पढ़ने तथा मनन करने का अवसर मिला है, तब से वह इनकी समुन्नत विचारधारा, उदात्त चिंतन, धार्मिक अनुभूति तथा आध्यात्मिक जगत् की रहस्यमयी अभिव्यक्तियों की शतमुख से प्रशंसा करता आया है।'

पाश्चात्य विद्वानों पर प्रभाव

वेदान्त दर्शन की महिमा पर मुग्ध होने वाले विदेशी विद्वानों में सबसे पहले अरबदेशीय विद्वान् अलबरूनी थे। वे ११वीं (ग्यारहवीं) शताब्दी में भारत आये थे। यहाँ आकर उन्होंने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया और उपनिषदों की सारस्वरूपा गीता पर वे लट्टू हो गये। यह ज्ञात नहीं है कि इन्होंने उपनिषदों का अध्ययन किया था या नहीं, लेकिन गीता की जो प्रशंसा उन्होंने की है, उसे उपनिषदों की ही प्रशंसा समझनी चाहिए।

वैदिक साहित्य के साथ पाश्चात्य विद्वानों का प्रथम परिचय उपनिषदों के माध्यम से ही हुआ। सम्राट् शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह अपनी धर्म सम्बन्धी उदारता के लिए भारत के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। सन् १६८० ईस्वी में जब दारा कश्मीर में थे, तब उन्हें सर्वप्रथम उपनिषदों की महिमा का पता लगा। उन्होंने काशी से पण्डितों को बुलाया और उनकी सहायता से पचास उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया। १६५७ ईस्वी में यह अनुवाद पूरा हुआ। इसके प्रायः तीन वर्ष के बाद सन् १६५९ ईस्वी में औरंगजेब के द्वारा दाराशिकोह मारे गये।

अकबर के समय में भी (१५५६-१५८५) कुछ उपनिषदों का अनुवाद हुआ था; परन्तु अकबर अथवा दारा द्वारा सम्पादित इन अनुवादों के प्रति सन् १७७५ ईस्वी से पहले तक किन्हीं भी पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि आकर्षित नहीं हुई। अयोध्या के नवाब सुजाउद्दौला की राजसभा के फारसी रेजीडेंट श्री एम० गेंटिल ने सन् १७७५ में प्रसिद्ध यात्री एंक्वेटिल डुपेर्रन (Anquetil Duperron) को दाराशिकोह के द्वारा सम्पादित उक्त फारसी अनुवाद की एक पाण्डुलिपि भेजी। एंक्वेटिल डुपेर्रन ने कहीं से एक दूसरी पाण्डुलिपि प्राप्त की और दोनों को मिलाकर फ्रेंच तथा लैटिन भाषा में उस फारसी अनुवाद का पुनः अनुवाद किया। लैटिन अनुवाद सन् १८०१-१८०२ में 'औपनेखत' (OUPNE KHAT) नाम से प्रकाशित हुआ। फ्रेंच अनुवाद नहीं छपा।

उक्त लैटिन अनुवाद के प्रकाशित होने पर पाश्चात्य पण्डितों की दृष्टि इधर कुछ आकर्षित तो हुई, किन्तु अनुवाद का अनुवाद होने के कारण वह इतना अस्पष्ट और दुर्बोध हो गया था कि उसका मर्म समझकर रसास्वादन करना सहज नहीं था। जर्मनी के सुप्रसिद्ध दार्शनिक श्री अर्थर शोपेन हॉवर ने (सन् १७८८-१८६०) बहुत कठिन परिश्रम करके